ISSN 23476215

संस्कृति समन्वय

यूजीसी पंजीकृत संदर्भित शोध पत्रिका

SANSKRITI SAMANVYA

UGC Listed Refereed Research Journal

UGC Approved No. 40707

Volume - 2 December 2017

Bi- annual Bi- lingual

संस्कृति समन्वय

सामाजिक अध्ययन एवं शोध केन्द्र, उदयपुर

अनुक्रमणिका/ CONTENTS

पृष्ठ संख्या

वनवासियों को भारतीय समाज की मुख्यधारा से तोड़ने के प्रयास 7
– डॉ. महावीर प्रसाद जैन

अनुच्छेद 370 : एकीकरण का साधन अथवा अलगाववाद का वाहक 21
– डॉ. बालुदान बारहठ

भारत में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा और अल्पसंख्यकवाद 32
– डॉ. आशीष सिसोदिया

प्रिण्ट मीडिया और उसके सामाजिक सरोकार 39
– डॉ. बालूदान बारहठ

5. पंथनिरपेक्षता और अल्पसंख्यकतावाद 45
– सुबोधकान्त नायक

6. क्रान्तिकारी साहित्यकार केसरी सिंह बारहठ 53
– भंवर सिंह चारण

7. संस्कृत वाङ्मय में धर्म का स्वरूप 59
– डॉ. रेखा गुप्ता

8. मेवाड़ राजवंश में मातमपोशी एवं तलवार बंधायी की परम्परा 65
– डॉ. सुदर्शन सिंह राठौड़

प्रिण्ट मीडिया और उसके सामाजिक सरोकार

❑ डॉ. बालूदान बारहठ

ार

मीडिया लोकतंत्र का सशक्त रक्षक माना जाता है। किसी भी लोकतांत्रिक समाज का यह चौथा तम्भ होता है। वह समाज में नवीन चेतना के निर्माण का भी महत्वपूर्ण माध्यम है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में प्रिण्ट मीडिया ने रचनात्मक भूमिका का निर्वाह किया था। लेकिन उत्तरोत्तर काल में मीडिया रचनात्मक, उत्तरदायी एवं निष्पक्ष होने की बजाय व्यवसायिक, सतही एवं पूर्वाग्रहयुक्त नजर आने लगा है। उसकी निष्पक्षता, निर्भीकता एवं पैनापन सवालों के घेरे में है। प्रस्तुत आलेख प्रिण्ट मीडिया की स्वतंत्रता आन्दोलन में भूमिका, आपातकाल में उसकी स्थिति एवं वर्तमान में उसकी कार्यप्रणाली पर विश्लेषण का प्रयास है।

संकेत शब्द

प्रिण्ट मीडिया, स्वाधीनता आन्दोलन, औपनिवेशिक शोषण, सामाजिक उत्तरदायित्व, जवाबदेहिता।

मीडिया किसी सामाजिक शून्य में काम नहीं करता अपितु यह मानवीय पर्यावरण से प्रभावित होता भी है और स्वयं उसे प्रभावित करता भी है। इसलिए मीडिया की चर्चा दो अलग-अलग ऐतिहासिक क्रमों में करना प्रासंगिक होगा – स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्र भारत में, क्योंकि स्वाधीनता संघर्ष और ब्रिटिश शासन के बीच जो पारस्परिक संघर्ष था, उसका प्रभाव मीडिया पर भी स्पष्ट परिलक्षित है। भारत में अखबार ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा ही पैदा हुए थे। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ने जन सम्पर्क तथा स्वतंत्रता के विचारों के प्रसार-प्रचार के लिए, अखबारों के प्रकाशन को महत्वपूर्ण माना था। भारत में पहले समाचार पत्र का प्रारम्भ 1780 ई. में "बंगाल गजट" नाम से हुआ, जिसे एक अंग्रेज जेम्स आगस्टस हिकं द्वारा कलकत्ता से साप्ताहिक रूप से प्रारम्भ किया गया। उसके बाद राजा राममोहन राय ने बंगाली साप्ताहिक 'सम्वाद कौमुदी' और एक फारसी साप्ताहिक 'मिरात उल अखबार' प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे सन् 1850 तक आते-आते भारत में विभिन्न भाषाओं में समाचार पत्रों की संख्या तीन अंकों में पहुँच गयी थी। इन समाचार पत्रों को इनके उद्देश्यों के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है – एक वे जो स्वाधीनता आन्दोलन के मुखपत्र के रूप में उभरकर आये तथा दूसरे वे जो ब्रिटिश साम्राज्य की श्रेष्ठता को स्वीकार करते थे। तिलक द्वारा स्थापित केसरी और मराठा, सुरेन्द्र नाथ

बनर्जी का बंगोली, शिशिर घोष एवं मोतीलाल घोष का अमृत बाजार पत्रिका, गोखले का सुधारक, दादाभाई नौरोजी का वायस ऑफ इण्डिया, गिरीश घोष द्वारा स्थापित हिन्दू पैट्रियट, टैगोर का... तथा मदन मोहन मालवीय का अभ्युदय आदि समाचार पत्र जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के मुख पत्र के रूप में लोकप्रिय हुए, वहीं ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध समाचार पत्र थे - कलकत्ता स्टेट्समैन, बम्बई में टाईम्स ऑफ इण्डिया, मद्रास में मेल, इलाहाबाद में पायोनियर, अमृत बाजार पत्रिका, लीडर आदि।

स्वाधीनता आन्दोलन के समर्थक समाचार पत्रों ने बड़ी निर्भीकता से औपनिवेशिक शोषण और इसके विरूद्ध प्रारम्भ भारतीय प्रतिकार को आवाज देना प्रारम्भ किया। बंगाल विभाजन के विरूद्ध जनमत निर्माण, क्रान्तिकारी आन्दोलन के पक्ष में वातावरण बनाने, महात्मा गाँधी के आन्दोलनों को जन-आन्दोलन बनाने आदि में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। बावजूद इसके कि तब प्रेस को कोई कानूनी संरक्षण प्राप्त नहीं था। उसने ऐसे साहस और स्वाधीनता का प्रदर्शन किया जैसा आज कुछ ही सम्पादक करते है, जबकि प्रेस संविधान द्वारा सुरक्षित है। एक उदाहरण देना उपयुक्त होगा। 1905 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में भाषण देते हुए वाइसराय कर्जन ने कहा कि,

''सत्य के सर्वोच्च आदर्श की अवधारणा काफी हद तक पाश्चात्य अवधारणा है। निश्चित रूप से पूरब से बहुत पहले पश्चिम की नैतिक संहिता में सत्य को ऊँचा स्थान मिला हुआ था।''

दूसरे दिन अमृत बाजार पत्रिका में मुख पृष्ठ पर कर्जन का यह भाषण प्रकाशित किया, जिसके साथ बाक्स में कर्जन की किताब ''प्रॉब्लम्स ऑफ दी ईस्ट'' का एक उद्धरण प्रकाशित किया, जिसमें स्वयं कर्जन ने गर्वीले रूप से लिखा था कि किस तरह उसने झूठ बोलकर कोरिया के विदेश कार्यालय के अध्यक्ष को बेवकूफ बनाया था। हम समझ सकते है कि इस समाचार को पढ़कर कर्जन का चेहरा क्रोध में कितना लाल हो उठा होगा।

स्वतंत्रता संग्राम को समर्थन देने और अवसर पाते ही ब्रिटिश सरकार को घेरने के अलावा उन्होंने अनेक स्वतंत्रता सैनानियों को अपने यहाँ वेतनभोगी के रूप में भी रखा। इस तरह स्वाधीनता के समय तक भारत में एक सशक्त प्रेस का निर्माण हुआ, जो बड़ी कुशलता से समाज में रचनात्मक भूमिका का निर्वहन कर रहा था।

स्वतंत्रोत्तर परिदृश्य बिल्कुल अलग था। प्रेस को अब सरकारी प्रतिबन्धों का सामना नहीं करना पड़ रहा था। एंग्लो इण्डियन और भारतीय स्वामित्व वाले प्रेस के बीच की विभाजक रेखा भी समाप्त हो गई थी, इसलिए अब सरकार और मीडिया दोनों के उद्देश्यों में भी कोई फर्क नहीं था - राष्ट्र का पुनर्निर्माण। मीडिया का सरोकार अब आर्थिक विकास, गरीबी उन्मूलन, ग्रामीण विकास, आन्तरिक सुरक्षा एवं वैदेशिक नीति जैसे विषयों से होना था। प्रश्न यह है कि क्या मीडिया ने इन भूमिकाओं का पालन किया है और दायित्व निभाया है, जैसा इसे नये सन्दर्भ में करना चाहिए था। इस प्रश्न पर आने

पूर्व इस बात की खोज भी आवश्यक है कि क्या भारत में मीडिया के विकास और विस्तार की वश्यक दशाएँ है? स्वाधीनता से पहले के प्रतिबन्धों का हटना, स्वतंत्रता आन्दोलन में रचनात्मक मेका की पृष्ठभूमि से प्राप्त नागरिक सहयोग, जनसंख्या की साक्षरता दर में बढ़ोतरी, तकनीकी कास, एकल परिवारों का बढ़ना, मध्यम वर्ग का बढ़ता दायरा, औद्योगिक और आर्थिक विकास, रीकरण आदि वे तत्व है, जिन्होंने प्रिण्ट मीडिया के प्रसारण और विस्तार में सहायता की। चूँकि प्रेस र मीडिया की स्वतंत्रता लोकतंत्र के लिए परिभाषित मापदण्ड है, इस तथ्य ने भी भारत में प्रेस को सीमित आयाम प्रदान किये है। इन सब अनुकूल दशाओं का परिणाम यह है कि आज देश में करीब 00 अखबार दैनिक रूप से प्रकाशित होते हैं, जिनकी प्रसारण संख्या करीब 12 करोड़ प्रतिदिन है। मान में देश में 80,000 से अधिक पंजीकृत अखबार है जबकि 1950 में देश में करीब 200 बबार दैनिक रूप से निकलते थे, जिनकी प्रसारण संख्या करीब 50 लाख थी।

प्रेस की स्वतंत्रता एवं उसके विकास की अनुकूल दशाओं पर चर्चा के बाद पुनः इस प्रश्न पर कि ा प्रिण्ट मीडिया अपनी वास्तविक भूमिका का निर्वाह कर रहा है? उत्तर औपनिवेश काल में प्रिण्ट डिया सरकार और समाज से सवाल करता और उन्हें जवाबदेह बनाये रखने का प्रयास करता हुआ ाई देता है। स्वतंत्रता से पूर्व के लड़ाकूपन को बनाये रखते हुए 1947-48 की पाकिस्तान के साथ ड़ाई, हैदराबाद के भारत में विलय, नेहरू सरकार के जीप घोटाले, सन् 1962 के भारत-चीन युद्ध ादि घटनाओं में अखबारों ने रचनात्मक भूमिका निभाई। चीन से युद्ध के समय रक्षा मंत्री के रूप में ष्ण मेनन की बेहद विवादास्पद भूमिका को अखबारों ने प्रमुखता से उठाया, जिसने उन्हें पद स्थापित के लिए नेहरू को बाध्य किया। प्रताप सिंह कैरो एवं बीजू पटनायक को मुख्य मंत्री पद से ाने की पृष्ठभूमि भी मीडिया की ही देन थी। बंग्लादेश मुक्ति आन्दोलन, सन् 1972 का अकाल, 974 के प्रथम नाभिकीय परीक्षण, रेल्वे की हड़ताल आदि विषयों पर वृत्तान्त समाचार पत्रों ने इस कार दिया, जिससे की किसी भी लोकतंत्र को अपने चौथे स्तम्भ पर अभिमान हो। आपातकाल के लंकित काल में भी अनेक पत्रकारों ने इसका साहसपूर्वक सामना किया, यद्यपि इनमें से कई जेल ने को बाध्य हुए। आपात की घोषणा के दूसरे दिन कई अखबारों में सम्पादकीय कॉलम खाली छोड़े ये। स्टेट्समैन व इण्डियन एक्सप्रेस ने बहादुरीपूर्वक आपातकाल का सामना किया। निखिल चक्रवर्ती सरकार का साथ देने की बजाय साप्ताहिक 'मेनस्ट्रीम' को बन्द कर देना ही उचित समझा।

यह भी एक विचित्र संयोग ही है कि स्वतंत्रता और अनुकूलता सामान्यतः स्खलन का कारण बनती , चाहे व्यक्ति हो अथवा कोई संस्था। भारतीय प्रिण्ट मीडिया के लिए भी यह इतना ही सत्य है। शेषकर, आर्थिक उदारीकरण के बाद से अनेक ऐसी अनुकूलता रही, जिन्होंने अखबारों के विकास और विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लेकिन इस विकास में मीडिया को अपने सामाजिक सरोकारों और उत्तरदायित्वों से विमुख करने का ही कार्य किया गोया कि यह अवसरवादिता भी उसके फलक विस्तार में सहायक तत्व हो। अब मीडिया ने सामूहिक संवाद के और प्रभावशाली साधन के रूप में

अपने को स्थापित किया है, लेकिन उसका रूझान तेजी से सतहीकरण की ओर बढ़ रहा है। पॉप-मनोरंजन, फैशन डिजाईनिंग, खिलाड़ियों, मॉडलों और अभिनेत्रियों के व्यक्तिगत जीवन समाचार मुख्य स्थान प्राप्त कर रहे है, जबकि गम्भीर मुद्दे, गरीबी, स्वास्थ्य, कुपोषण, पर्यावरण तुलनात्मक रूप से कम ध्यान पा रहे है। नागपुर में आयोजित लेक्मे इण्डिया फैशन शो को बारह पत्रकार कवर कर रहे थे, जहाँ मॉडल सूती कपड़ों का प्रदर्शन कर रही थी, लेकिन पास ही विदर्भ क्षेत्र में सूती कपड़ों के लिए आवश्यक कपास की खेती करने वाले किसान आत्महत्या को कवर करने की ओर मीडिया का ज्यादा ध्यान नहीं था। खबरों को उत्तेजक ढंग प्रस्तुत कर समाज में सनसनी पैदा करना अखबारों की पसन्दीदा अकादमिक कसरत बन गई कारण से सम्पादकीय पृष्ठ के आलेखों और उनकी व्याख्याएँ महत्व खो रही है, जो इन्हें पहले था।

साथ ही, वर्तमान में कॉर्पोरेट संस्कृति ने मीडिया दफ्तरों में छाना प्रारम्भ कर दिया है। फलस्व अनेक उदाहरण सामने आते है, जब अखबारों ने सामान्य हित की अवहेलना कर अपने को व्यवसायिक घराने के मुख पत्र के रूप में प्रस्तुत किया। अखबार व्यवसायिक हितों के अनुकूल जन निर्माण का साधन समझे जाने लगे है। भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। यह कृ समाज से औद्योगिक समाज में रूपान्तरित हो रहा है। ऐसे में मीडिया से और ज्यादा जवाबदेह बनने अपेक्षा है। सशक्त व निर्भीक प्रेस परिपक्व लोकतंत्र का एक मापदण्ड माना जाता है, इसलिए भा मीडिया भारतीय लोकतंत्र का भी एक मापदण्ड है। वैचारिक प्रतिबद्धता का होना और उसके आग्रह रखना चिन्तनशील एवं प्रगतिशील पत्रकारिता का प्रतीक माना जा सकता है, लेकिन किसी विशेष विचारधारा के प्रति दुराग्रह की भावना रखकर उसके विरूद्ध मिथ्या प्रचार करना एवं उस खिलाफ जनमत निर्माण करना, मीडिया का एक और उल्लेखनीय स्खलन है। वर्तमान में हम देख सकते है कि कई समाचार पत्र एवं पत्रकार इस तरह कार्य कर रहे है कि लगता है वे निष्पक्ष एवं स्वतं मीडिया कम एवं विपक्षी पार्टी का मुख पत्र अधिक है। यही कारण है कि सरकार के एक मंत्री मीडिया की तुलना करने में बहुत कठोर हो जाते है। पेड न्यूज, पीत पत्रकारिता, अखबारों को ब्लेकमेलिंग का माध्यम बनाना, सनसनीखेज वातावरण का निर्माण करना आदि ऐसे अन्य घटक है, जिन्होंने पत्रकारिता को सामाजिक सरोकारों से विमुख करने में सहायक भूमिका निभाई है।

स्वतंत्रता संग्राम के एक अंग के रूप में काम करने वाला मीडिया इतना व्यवसायिक, अनुत्तरदायी एवं नकारात्मक कैसे बन गया? इसके अनेक कारणों में से एक कारण यह भी है कि उस समय के सम्पादक एवं मालिक बहुत सिद्धान्तवादी थे। स्वाधीनता के बाद भी लम्बे समय तक इन भूमिकाओं का निर्वहन करने वाले लोग आदर्शवादी, नैतिक एवं सोद्देश्य थे, किन्तु पिछले लगभग 20 वर्षों से जो पीढ़ी मीडिया में प्रभावी हुई है, उनकी पृष्ठभूमि बहुत भिन्न है। इनके सामाजिक दायरे में फिल्म स्टार, कॉर्पोरेट्स, ब्यूटी क्वीन, सतही बुद्धि वाले सोशलाइट एवं तथाकथित एक्टिविस्ट, NGO's के तथाकथित

-1, ISSN-23476265

गतिशील कर्ताधर्ता आदि शामिल है। तरूण तेजपाल जैसे स्वघोषित सितारों की एक नवीन पीढ़ी मंच पर हावी है, जिनके लिए नैतिकता, सांस्कृतिक मूल्य और इतिहास बोध कोई मायने नहीं रखता। उनके लिए मीडिया मात्र मनोरंजन एवं धन उगाही का साधन मात्र है। तभी वे अपने एक बौद्धिक (?) महोत्सव के उद्घाटन के दौरान घोषणा करते है कि "खाओ, पीयो, मौज करो और जो पसन्द हो उसके साथ हम-बिस्तर हो जाओ।" आज अखबारों के मालिकों की एक ऐसी पीढ़ी मौजूद है जो अपने प्रकाशनों का उपयोग ज्यादातर बार शक्ति और साधन प्राप्त करने के माध्यम के रूप में करते है, न कि सार्थक संवाद के लिए। उनके प्रकाशनों में वरिष्ठ सम्पादकीय पद सत्यनिष्ठता अथवा दक्षता के आधार पर नहीं दिये जाकर उनकी सौदेबाजी की क्षमता के आधार पर दिये जाते है। इसके अलावा टेलीविजन के बड़े आकार एवं प्रभाव ने भी प्रिण्ट मीडिया को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है।

वास्तव में, यह कहा जा सकता है कि प्रिण्ट मीडिया का टेलीविजन द्वारा औपनिवेशीकरण हुआ है। टेलीविजन अपनी संस्कृति प्रिण्ट मीडिया पर उसी प्रकार थोप रहा है, जैसे औपनिवेशिक शक्तियाँ अपनी संस्कृति उपनिवेशों पर थोपती थी। इसलिए प्रिण्ट और इलेक्ट्रॉनिक्स दोनों आयामों पर एक साथ विचार करने की आवश्यकता है, न कि इसके केवल एक पक्ष पर। साथ ही, पाठकों की रूचि भी अन्ततः मुख्य रूप से अखबार के कलेवर को आकार देने वाला प्रमुख कारक है। सम्पादकीय, चिन्तनशील आलेखों एवं रविवारीय गम्भीर चर्चाओं के पाठकों की संख्या निरन्तर कम होती जा रही है और ऐसे पाठक बहुसंख्या में है, जिनके लिए सिनेमा, टेलीविजन, सेलिब्रिटीज के व्यक्तिगत पक्षों की जानकारी महत्वपूर्ण पठनीय सामग्री है। अतः मीडिया के बढ़ते सतहीकरण के लिए कहीं न कहीं समाज भी उत्तरदायी है। यद्यपि यह प्रश्न अभी भी मौजूद है कि "जैसा चाहते है वैसा पढ़ाया, दिखाया जाता है अथवा जिसे देखते एवं पढ़ते है, अन्ततः उससे हम अनुकूलन कर लेते है।"

मीडिया लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ माना जाता है। वह सच्चे लोकतंत्र के वाहक के रूप में भी जाना जाता है। उसे समाज के सच्चे प्रहरी एवं अन्याय, अपराध एवं शोषण के विरूद्ध सशक्त साधन के रूप में अपनी पहचान को और स्पष्ट करने की आवश्यकता है। उसे शक्ति का पिछलग्गू होने की छाप से ऊपर उठकर लड़ाकेपन के तेवर की ओर अभिमुख होना होगा, क्योंकि किन्हीं राजनेताओं के अवमूलन से समाज नष्ट नहीं होता, किन्हीं अधिकारियों के भ्रष्ट आचरण से भी लोकतंत्र समाप्त नहीं होगा, लेकिन पत्रकार एवं बुद्धिजीवी अपने पथ से विचलित हो गये, तब समाज एवं लोकतंत्र दोनों पूरी तरह नष्ट हो जायेंगे। यही तो अन्याय, असत्य, अत्याचार एवं अविचार का प्रतिवाद कर समाज को सही राह दिखाते है, उसे बचाते है और प्रगति की राह पर ले जाते है। कैसे चखेंगे नमक का स्वाद अगर नमक में ही नमक का स्वाद ना रहे? आशावाद जीवन जीने का एक बेहतर तरीका है। अतः उम्मीद है, मीडिया अपनी धार एवं तीखेपन को पुनः प्राप्त कर समाज को नवीन दिशा देने एवं सामाजिक सरोकारों से जुड़ने की ओर पुनः अग्रसर होगा।